

प्रस्तावना

शास्त्रों में, जब तीन मुख्य लोक उत्पन्न किये जा रहे थे, तब प्रत्येक लोक में दो पुरुष, एक पुरुष और एक स्त्री, उत्पन्न हो गये, परन्तु अभी बड़े और बड़े स्त्रियों में कोई बेटा न था। एक ब्रह्मा एक शूद्र उत्पन्न था, जिसमें न कोई पुत्र था और न स्त्री। ब्रह्मा और शूद्र में कोई बेटा न था। जब ब्रह्मा देवता अपने शारीरिक प्रकाश के साथ पृथ्वी पर उतरे, वे अपना भोजन पृथ्वी की मोटाई से लेते थे, इतिहास सोम और ऐतरेय का स्वभाव प्राकृतिक हुआ, और वे इन की मताओं और सुधारों का एक दूसरे के बाद अपने समे। जब उनका प्रकाश कम हो गया तब सूर्य-चन्द्र प्रकाश हो गये। बिना और कृषि की आवश्यकता पड़ा, और राजा-प्रजा तथा विद्वान्-अन्धकारों नियम स्थापित हो गये। तब अधिवास्वियों को ऊपर मोताकाश की ओर बेसने पर नक्षत्र घूमते हुए दिखाई दिये। बाद की नीचे की ओर दृष्टि डालने पर उन्होंने देखा कि पृथ्वी अधिक दूरी होती जा रही है। दो तत्वों, अग्नि और वायु ने पृथ्वी का एक धारण कर लिया और उनके बीच अन्तर्लिप्त में मनुष्य उत्पन्न हुए; मते और साज पवन के प्रभाव से, प्रकृति में मनुष्य मान डूना पड़ा हो गये। एक पर पर्वत बड़े बड़े थे, नक्षत्र ऊपर बिखरे हुए थे और बड़े पर्वत पर्वत और बड़े रहे थे। अन्त को उनमें मत-भेद हो गया। तब वे ध्वजों के दिनों में विनय हो गये; तब पर्वतों के दिनों में बड़े गये।

हमारे परमपूज्य लोक-प्रेम शास्त्र ने ही अद्भुत तत्व का उल्लेख किया है। उत्तरे बाह्य निदान समझाने हैं और अग्रे अनुप

मदाया। इस पर उनका बहुतनाद रागगुह में गुनार्य दिया, जिससे अंतरंग आत्माओं का उद्धार हुआ।

माता-पिता के प्रेम का बदला चुकाने के लिए जब वे बलिष्ठतु बापत आये तब उन्हें बहुत-से ऐसे शिष्य मिले, जिनको उनके उपदेशों पर धडा था। उन्होंने सबसे पहले आत्मान कीर्णित्य को उपदेश देकर भिक्षु बनाया।

उन्होंने अपने जीवन में अन्तिम बीसा सुभद्र* को दो, जिससे उनके जीवन का अन्तिम काल उनकी मूल-अभिलाषा के अनुसूप हो।

वे संघ की स्थापना और रक्षा करते हुए अस्ती धर्म तक जीने रहे। उन्होंने नौ सभाओं में अपने निर्वाण के सिद्धान्त का प्रचार किया।

साधारण अनुयायियों को वे ब्रह्म पंचशील की ही शिक्षा देते थे, परन्तु भिक्षुओं को अपराधों के सात स्तरों का आशय सूब खोलकर समझाना करते थे। वे समझते थे कि इस लोक के अधिवासियों के बड़े से बड़े पाप भी शील की वृद्धि से दूर हो जाते हैं, और मेरी विनय की सम्पूर्ण शिक्षा से छोटे से छोटे दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

जब पुरंदेव लोगों को उनकी योग्यताओं के अनुसार उपदेश तथा परिश्रम देने की इच्छा करते, तब वे उन सब पुरुषों को छोड़ देते जो दूसरे मनुष्य के लिए अर्थात् उपयुक्त थे। अन्त में इस पराशरान पर भगवान् का धर्मोपदेश-काल जब समाप्ति को पहुँच चुका और वे अपने काम में कृतकार्य हो चुके तब उनका प्रतिबिम्ब शांत वृक्षों की को घेरियों के बीच सोप हो गया। उस समय मनुष्य और देवता की कौन रहे, सांन और प्रेत भी शोकांत थे। उन सबके आँसुओं से शांत-तराओं के नीचे की भूमि भीगकर कीवड़ हो गई। जिनको सबसे

* बुद्ध का अन्तिम शिष्य सुभद्र था।

1

၁။ အထွေထွေအားဖြင့် မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည် မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည် မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည်
 မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည် မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည် မြန်မာ့အလင်းသတင်းစာသည်

2

अर्द्धशतक विद्वान्-विद्वान् एवं दत्तों के अन्तिम की सम्पत्ति
है। यह विद्वान् का अन्तिम ही विद्वान् है। दत्तों की विद्वान् की
दत्तों की सम्पत्ति दत्तों है। दत्तों की विद्वान् की सम्पत्ति है।

Y

अनुसंधान विभाग के बजट अनुमान हैं। हमारे विभागों के २,५० करोड़ रुपये हैं, वेदा विभागों के ही हमारे ही बजट ३०,००० हैं। साथ ही हम बजट के अंदर हैं कि हम विभाग के विभाग के इन विभागों के बजट अनुमानों का बजट अनुमान है।

काल के दाँवों काटने और दक्षिण-पश्चिम के दिशा में जाने का
होना चाहते हैं। साथ ही मित्र-मित्र बनाने में विशेष विचार के
बगैर हो नहीं सकेगा, मित्र-मित्र है।

मकर (मकर-आयन) में सूर्य सूर्य-मंडल का जोर करने लगा है। मकर और मिनर में अतिशय अत्यन्त ही अतिशय है, मकर-आयन (मकर-आयन) में सूर्य जोर सूर्य-मंडल के अत्यन्त ही है। मकर और मिनर में अतिशय अत्यन्त ही अतिशय है, मकर-आयन (मकर-आयन) में सूर्य जोर सूर्य-मंडल के अत्यन्त ही है। मकर और मिनर में अतिशय अत्यन्त ही अतिशय है, मकर-आयन (मकर-आयन) में सूर्य जोर सूर्य-मंडल के अत्यन्त ही है।

[illegible]

॥ अथ श्रीगणेशोत्थानम् ॥
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संस्कारों से ही वे काम की चीजें और सब कुछ और प्राप्त, सब
देनाकर, हम दूसरों को देते हैं। हमें भगवान् ने ही पुनरा-
वृत्ति, जो हमारे समस्त-कर्मों से उत्पन्न है और जिसमें किसी
काम का कारण नहीं, कुछ अवसर ही दिया गया है।
इसलिए विशेष-द्वारा भगवान् हमें, और हमारे ही कुछ सब-
भवे के कारण हम सब में बंदिन बनाकर (मित्रों को देना
है) हैं।

हमें जहाँ सम्पूर्णताओं का संगम-स्रोत स्थित दिना है जो कि दिन-रात से मिलने हैं, और आगे सम्पूर्ण जहाँ हमें जो समा हैं दिना आकार में आकारों के अन्तर्गत हैं। यदि आप मेरे इस लेख को पढ़ें तो एक भी एक क्षण के दिना, आप भारत के सम्पूर्ण सम्पूर्णताओं को जान सकेंगे, और एक ही क्षण के दिना आप अपनी सम्पूर्णताओं के लिए सम्पूर्णताओं का स्थान बन सकेंगे।

इस दुःख में रहित सभी बातें भावपूर्णदर्शित्व-विधान के अनुसार हैं, इसविधि हमारे विधानों की शिक्षा के साथ इसे सहज में बाँट देना चाहिये। इन सब के विषय प्राप्त रहस्यमय के विषय में मिलते हैं।

आर्यभट्टजीसिंहारविन्दार के तीन ग्रन्थों १—। धर्म-
सूत्र; २. ब्रह्मसूत्र; ३. वाक्यपदीय।

दीखकर, उसे नज़रें पंख खगता पाता। जगका दीया जगका गदा गङ्गा और जाला जगके बगुन में हँसा हुआ होला जाता। जगके गिर पर छोपी न हो। यदि रहे बी आग केतर बह (खड़ाई के लक्ष) हमारे स्थानों में घूमे तो कोई दोष नहीं। तीन-प्रदेश में, भिक्षु को छोटी-छोटी खड़ाई अथवा जग देश के अनुसूच बिनी प्रकार का घूना पहनने की आगा है।

यह बात सुनितपूर्वक रधीवार करनी पड़ेगी कि शरीर की रक्षा के लिए हमें बड़ी सरसी के महीनों में अरघ्यायी रूप से अधिक कपड़े पहनने चाहिए, परन्तु : सन्त और धीमा में मनुष्य को विनय के नियमों* का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए। अड़ाई पहनकर मनुष्य पवित्र रूप की प्रदर्शना न करे, इस बात की स्पष्ट शिक्षा आरम्भ से ही दी गई थी।

इस बात की घोषणा चिरकाल से की जा चुकी है कि भिक्षु मय-कुटी के पास पापुका; पहन कर न जा : किन्तु कई लोग ऐसे हैं जो सब ही इन नियमों को भङ्ग करते हैं; और भारतवर्ष में हमारे बुद्ध के नियमों का यह भारी अपमान है।

[३]

भोजन के समय एक छोटी कुर्सी पर बैठना

भारत में भिक्षु लोग भोजन के पहले अपने हाथ-पाँव धोते और छोटी-छोटी कुर्तियों पर अलग-अलग बैठते हैं। यह कुर्सी सात इंच ऊँची और एक वर्गफुट चौड़ी होती है। उसका आसन घेत का बना होता

* बुद्ध की बताई हुई नीति को 'विनय' कहते हैं। सारी नीतियों के संग्रह का नाम 'विनय-पिटकम्' है।

† पाठ में 'पुर' लिखा है, जो कि काश्यप के मतानुसार, मरुत में एक प्रकार का जूता है। मालूम नहीं, बुद्ध मरुत काय क्या है।

पवित्र ज्ञान अथविप्र भोजन की परमात्म

भोजन के विधियों और भोजनियों में यह रीति है कि यदि वेदम
एक भी एक भोजन का स्वाद मिला जाए तो वह अर्पित (मुर्खाने 'दुष्टा
हुआ') हो जाता है; और जिस वर्गों में भोजन करना तथा या उनका
विषय लक्ष्य करने दिया जाता। भोजन के समान होने की, जिस वर्गों
में भोजन करने का स्वाद उन्हें उदाहरण यह कहते हैं कि ऐसा दिया
जाता है।

यह रीति प्रत्यक्ष और निरन्तर दोनों में पाई जाती है। यह के ल
हमें में भी: प्रत्यक्ष रूप से (देखो) में भी प्रदर्शित है। कई लोगों
में कहा गया है:—यदि हमें के बाद वास्तव में करना तथा हाथ में
पैसा और दंडन तथा अन्य भोजन में भोजन करना सीखना स्वामी
जाती है। जो लोग विद्वानों के निम्न पर चरने हैं, उन्हें इस भोजन का कुछ
हम हो सकता है, वास्तव में सीधे आत्मों और प्रकृति हैं, वे अनुचित
कर्म का अनुसरण करने के लिए दुबटते विन जाते हैं। स्वाभाविक भोजन
विनो: स्वाभाविक भोजन के अनुसार वह एक दूसरे का स्वाद नहीं करना
चाहिए, उदाहरण यह कि मैं तुम्हारे विन विन भोजन को भोज
में करना चाहिए। अर्थात् दोनों के वास्तव, विनका एक
जान अनुभव को अर्पित कर देता है, उसे दुबटता तुम्हारे करना
चाहिए। यदि तुम्हारे विन विन ही वह तुम्हारे को छू देता है तो वह
एक ही अनुभव अर्पित है: उदाहरण यह कि मैं उदाहरण तुम्हारे करना
चाहिए। तुम्हारे का स्वाद ही जाते पर उसे करने की छुट्टि करती होती
है। जो लोग भोजन का करते हैं उन्हें करने के एक पक्ष में उदाहरण
रखना चाहिए, उन्हें एक पक्ष ही तुम्हारे करना चाहिए, और भोजन
के स्वाद का मैं जानूँ हूँ अनुभव और मैंने करने के मैं को करना
चाहिए।

के दूर भागे जाने से, और बहुत भागे जाने से। इन्हीं को छोड़
दुष्ट-धर्म का अनुष्ठान कर रहे हैं उन्हें हम बापों का बहुत प्यार
रखना चाहिए। परन्तु बीच में आधीन काल में दक्षिण और अफ्रीका
मोहन में कभी धर नहीं बिता गया।

[५]

एक सुकन के परचार मर्यादा

अब मोहन का बहुत बड़ा हाथों की भयानक सज्ज करी। और
हाथों की ध्वजध्वज सज्ज और सज्ज करी। हाथों की या तो मर के
आगे में या निम्नी और पानी की निम्नतर हीन से सज्ज किया जाना,
एक तरह कि बिना हाथों का कोई धर्म न हो जाना।

मर्यादा (कृष्ण करने के लिए) किसी सज्ज धर्म में से सज्ज
एक सज्ज के धर्म में सज्ज करी। यह धर्म या तो ताया
पक्षों पर खड़ा हो या हाथों में खड़ा हुआ हो। यदि धर्म हाथ से
छू याद तो इसे सज्ज करने की तीन सज्जियों, मर्यादा मर के
आगे, सुती निम्नी और पानी के सोबर से सज्जना, और धर्मों की दूर
करने के लिए पानी में भी सज्जना चाहिए। एकान्त स्थान में सज्ज
धर्म से पानी पीना मूर्ख में जाना या सज्जना है, परन्तु सार्वजनिक
स्थान में ऐसा करने का निषेध है। दो-तीन बार कुत्ता करने से मूर्ख
इस सज्ज हो जाना है। ऐसा किने बिना मूर्ख का पानी या कुछ
निम्नतर की जाता मरी। अब एक सज्ज सज्ज से कुत्ता न कर किया
हो मूर्ख में कुछ को बहर फेंकने देना चाहिए। निम्नतर, सज्ज बातन
में सज्ज नेवार किने बिना अपना बहुत किने बिना, न तो मोहन के
द्वार हैंनी और बरबार में सज्ज नष्ट करना उचित है, और न दिन-रात
अन्यत्र और बोली बने देना ही ठीक है। यदि कोई अपने जीवन-काल
में ऐसा या सज्ज करी है तो उसके कुत्तों का कोई भय नहीं रहता।

उपवास-दिन पर भोजन के नियम

भे भारत तथा दक्षिणी मागर के टीलों में, भिक्षुओं की भोजन के लिए नियमित करने की प्रवृत्ति का संशेष से वर्जन करेगा। भारत में अतिपिन्नेकर पहले भिक्षुओं के पास आता है, और प्रणाम करते उन्हें पदों पर निमंत्रण देता है। उपवास के दिन वह उन्हें 'यह टील समय है' कहकर सूचना देता है।

भिक्षुओं के लिए नानों के वर्जनों का ही उपयोग किया जाता है। ये बारीक दाल से दण्डन साफ कर दिये जाते हैं। मिर्ची के बीरे वर्जनों का एक बार उपयोग करना अनुचित नहीं। उनका उपयोग हो चुकने पर उन्हें एक खाई में फेंक देना चाहिए, क्योंकि उपयोग में लाये हुए मूलार्थन 'एक हए' वर्जनों की विनियम नहीं सुरक्षित रखना चाहिए। अतः भारत में, जहाँ-अहाँ मठों के विनियम तदनुसार हैं, वहाँ, फेंके हुए वर्जनों के डेर लगे रहते हैं, और इनका दुबारा उपयोग नहीं किया जाता।

दानपति के घर में भोजन करने की कोठरी की भूमि गाय के गोबर से सीर दी जाती है, और नियमित अन्तरों पर छोटी-छोटी कुरसियाँ बिछाई जाती हैं; और एक साफ ठितिया में दहन-सा जल तैयार किया जाता है। भिक्षुगण आकर पहले अपने हाथों के धोनाम सोलते हैं। सबसे सामने साफ सोटे रखे होने हैं। वे जल की परीक्षा करते हैं। यदि उत्तम कोई दीया नहीं तो वे उत्तम पाँव धोकर उन छोटी कुरसियों पर बैठ जाते हैं। वे कुछ समय तक विधाम करते हैं। सब दानपति समय देकर और वह मालूम करके कि सूर्य अब

* अर्थात् उपवास का दिन। वह भिक्षुओं और उनके भक्तजन के लिए धर्मानुष्ठान और वीर्य का दिन है और वह एक त्योहार है।

भोजन के समय पादसाग में बाग करनेवाले घूँप और दीप चढ़ाते हैं, और सब प्रकार के नैवेद्य दिये हुए भोजन देवता के सामने लगाने हैं। मैं एक बार वन्दन* विहार (अभ्यन) देखने गया था। वहाँ सामान्यतः एक गो से अधिक भिक्षु भोजन दिया करते हैं। एक बार, कोई दुपहर के समय, वहाँ सड़गा पाँच गो भिक्षु आ पहुँचे। उनके लिए दुपहर से ठीक पहले भोजन तैयार करने के लिए समय न था। विहार के एक मोहर की आता ने तत्काल बहुत-सी घूँप जलाई और बाले देवता के सामने भोजन चढ़ाकर उनसे प्रार्थना की—‘यद्यपि महामुनि निर्याण को प्राप्त हो चुका हैं, परन्तु तेरे जैसे प्राणी अभी तक मौजूद हैं। अब इस पवित्र स्थान की पूजा के लिए वहाँ प्रत्येक स्थान से भिक्षुगण प्यारे हैं। हमारा भोजन उनके लिए बस न निकले; क्योंकि यह तेरी शक्ति में है। इपा करके इस समय को मनाइए।’ सब सब भिक्षुओं को बिटला दिया गया। भोजन उस भारी भिक्षु-समूह के लिए पर्याप्त निकला, और सामान्य रूप से जितना पहले बचा करता था उतना बच भी रहा। मैं स्वयं उम स्थान की पूजा के लिए वहाँ गया; इसलिए मैंने उस बाले देवता की प्रतिमा देखी जिसके सामने भोजन की प्रचुर भेंट चढ़ाई गई थी। (गया के समीप) महायोगि बिहार के नाग महामुचिलिन्दों में ऐसी ही धार्मिक शक्ति है।

भोजन परोपन की विधि आगे दी जाती है। पहले कोई अंगूठे के परिमाण के छदरक के एक-एक या दो-दो टुकड़े (प्रत्येक अतिथि को) परोसे जाते हैं और साथ ही एक पत्ते पर उड़-उड़ घमघं भर नमक दे दिया जाता है। जो मनुष्य नमक परोसता है वह, हाथ जोड़े हुए प्रधान भिक्षु के सम्मुख घुटनों के बल झुककर, पीरे से कहता है ‘सम्प्रागतम्’।

* पुशिनगरान्तर्गत मुमुद्र-अभ्यन का एक विहार।

† महावग्न में लिखा है कि मुचिलिन्द बृद्ध की रक्षा करने तथा उनका उपदेश सुनने आता था।

बोर्ड ४०० सदस्य हैं। इस बोर्ड के द्वारा ही निर्णय ली जायेगा। अर्थात् हमें अपने अन्दर के दो बहुराज्य बोर्डों के बीच ही फैसला करना पड़ेगा। अर्थात् हमें अपने अन्दर के दो बहुराज्य बोर्डों के बीच ही फैसला करना पड़ेगा।

[illegible]

यों में, रूप और बनाव सब बड़ी दिव्य हैं। बड़ी रेशमों और बड़ी बड़ी बाहुओं की इनकी प्रशंसा है कि उनका बड़ा निम्न रहित है। बड़ी बड़ी बाहुओं और हाथों होता है; बड़ी भी अद्भुत-बहुत और भी बड़े बड़े बड़े बड़े बड़े बड़े बड़े बड़े हैं।

भारत के सबसे आगे के लोग भी लोग हिन्दी प्रसार का प्यार, अपना सबकुछ समर्पित कर रहे हैं। इन्हीं के अग्रिम से बड़े हल हो रहे हैं; उनका आत्मदान और अविद्वान नीतिज्ञ एवों हैं और उनके बच्चे ही आगे का चलने का कोई बन्द नहीं होता।

रक्षियों कातर के इन डोंगों में अचानक के दिन एक बड़े परि-
 काय में अतिथि दिया जाता है। पहले दिन शनकरि निरन्तर
 सुपारी डू दू (मुनार) में बनाया हुआ सुदृष्टि तैल और एक
 बालों में एते पर जिन्हें हूड डोंगों में बांधन तैयार करना है। इन
 डोंगों बांधों को एक बड़ी एली पर घुनकर एक सटोर बात्र से ईक
 दिया जाता है। एक सुन्दरे सोटे में एक शानकर एत दिया जाता है,
 और इन एली के सामने की भूमि पर गत छिड़र दिया जाता है।
 ये सब बाने हो जाने पर निशानों को मोवन के लिए बताया जाता

१. संप्रदायी, जिसका अनुवाद "दुहरा बबुर" दिया जाता है।

२. उत्तरात्मज्ञ, जिसका अनुवाद "ऊपर का परिवर्द्ध" दिया जाता है।

३. अन्तर्बान, जिसका अनुवाद "भीतर का परिवर्द्ध" दिया जाता है।

ऊपर बड़े गये तीनों बाँबर रहवाने हैं। उत्तर के बेलों में भिक्षुओं के दूँ बबुर अपने गेरों रङ्ग के कारण प्रायः कायाय रहवाने हैं। परन्तु इन पारिवर्धिक शब्द का जिनमें में व्यवहार नहीं हुआ।

४. पात्र।

५. निवारण, अर्थात् बँडने अवस्था सेटने के लिए कोई चीज।

६. परिवर्द्धन, अर्थात् पानी की छाननी।

दोहायों के नाम से छः परिवर्द्धन होने चाहिए।

मेरे अन्तर्हित वस्तुनिर्माण हैं—

१. संप्रदायी, एक दुहरा बबुर।

२. उत्तरात्मज्ञ, ऊपर का परिवर्द्ध।

३. अन्तर्बान, भीतर का परिवर्द्ध।

४. निवारण, बँडने अवस्था सेटने की वटाई।

५. (निवारण) एक अन्तरीय वस्तु।

६. प्रतिनिवारण (एक दुहरा निवारण)।

७. सङ्कुक्षिका, बटन की टकनवाला बटन।

८. प्रति-सङ्कुक्षिका (एक दुहरा सङ्कुक्षिका)।

९. (बाय-प्रोह्वन), शरीर पोछने का तीव्र

१०. (मुक्त-प्रोह्वन), मुँह पोछने का तीव्र

होते हैं ही संसार चलने का आधार या, और धूर्ति बीमारी के लिये इसकी आवश्यकता होती है, इसलिए और प्रकार में इसे प्रयोग में लाना चाहिए।

बायोक और मोटे रेशम की काला बुड़ ने ही है। यदि जान-बूझकर मोड़-झुका की जाय तो उस वर्म के रेश की काला रखी जायगी; परन्तु यदि जान-बूझकर न हो तो, बुड़ में बघनातुमा, कोई पाय न लगेगा। सोने प्रकार के बुड़ मानें ऐसे मानें छराने लगे हैं, जिसके लाने में कोई पाय नहीं। यदि इस नियम के भाव की मद्देनता की जायगी तो कुछ न कुछ सफल, बह थोड़ा भले ही हो, मकाम लगेगा।

(सोने प्रकार का मान लाने में), हमारा हवा का कोई मद्देनता नहीं होता, इसलिए हमारे पास एक ऐसा कारण मकाम हेतु है जो हमारे मकाम-मकाम को सिद्ध कर देता है।

ऐसे काम, जैसा कि रेशम के रेशों की बुझानेवाली स्वयं काकर माँगना, मकाम कीलों की हवा होने देखना, उन रेशों का तो करना ही बना जो अन्तिम मोड़ की काला चलने हैं, सामान्य रेशों के लिए भी उचित नहीं। ये वर्म, इस दृष्टि में देखने पर, मकाम अन्तिम निष्ठ होने हैं। परन्तु मान लीजिए कि कोई वास्तविक (कोई ऐसी वास्तु जैसी रेशम की काला) काकर भेद करता है और जिस "मकाम" काकर उन रेश की स्वीकार कर लेता है तब तक हमारे में उत्तरा उत्तर बना रहे; जो इस वर्म में लगे कोई पाय नहीं लगेगा। भारत में विधुओं के वर्म को ही वे टॉर-रिशमों लीने और निवे जाते हैं, वर्म के लाने-लाने पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। उनसे निर्माण में रेश का रेश रेश में उचित नहीं लाने।

रेशम के रेशों का नाम रेशम है, और जो रेशम लाने बनवाना जाता है वह भी रेशम ही बनाना है; वह बड़ी सुन्दरता की है, और (रेशम के लिए) इसका उपयोग निष्ठ है। रेशम



सोचना होता है, जहाँ कुछे जगहों जगहों की ही के साथ दृष्टान्तों के
इच्छा पड़ता है, यदि हम इसी गिरों को (सामने) बीच का गिरावे
और बाँधे हो। यदि बाँध को देटी बहुत लम्बी हो तो हमें जगहों
बाँधना पड़ता है; यदि बहुत छोटी हो तो जगहों कुछ और जोड़ना होता
है। यदि बाँध के दोनों गिरों को भी देना या बाँधना नहीं चाहिए।

सारा पढ़ने की ऊपर रही। रीति सर्वात्मिकादिबोध को हमारे
निवासों के समान बननी है। यह परिभाषा निवास (—रिति)
बहुलांगी है, जिसका बोधों में अर्थ है 'सारा पढ़ने की रीति-शुद्ध रीति।'
(रिति) अन्य की बाँधाई एक जगहों के समान होती है। जूने का
लम्बा, मोटे का बाँधना, इत्यादि गीत हो चारों बाँधे; दोनों की आत्मा है।
विनय-मूल्यों में बसतान के रस्ते जैसी बहुत के उपयोग की आत्मा नहीं।

जब हम छोटी बुद्धों अपना सबकुछ के बुद्धों पर बाँधने हो, तब
हमारे अपने 'निवास' के ऊपरी भाग को अपने उत्तरीय की भूमि के नीचे
रखना, और साया को ही प्रकाश से ऊपर सोचना होता है, जिसमें यह
(आत्म पर) सुन्दरी जगहों के नीचे आ जाय। सुन्दरी दोनों पढ़ने डिके
होने चाहिए, परन्तु सुन्दरी नरक के नष्टा रहने में कोई बाँध नहीं।

सारा 'निवास' मनुष्य की माभि से लेकर उसके टखनों की हड्डियों
में चार जगहों ऊपर तब बाँधे रहे, यह एक ऐसा नियम है जिसका
पान्न उस समय दिया जाता है जब कि भिक्षु किसी सामान्य मनुष्य
के घर में होता है। परन्तु जब हम बिहार में हों, तब नरक के निषेध
अपेक्षा को सुना रखने की आत्मा है। यह नियम स्वयं बुद्ध ने बनाया
था, और इसने अपनी इच्छा के अनुसार परिदत्त नहीं करना चाहिए।
जिसका के विषय बाँधे करना और अपनी स्वाधरर इच्छा पर चलना
चलित नहीं। जो निवास हम पढ़ने शुरू हो, वह यदि लम्बा है और भूमि से
हटा है, तो हम एक ओर तो किसी अद्वान् भवन के दिने हुए गुड दान
को गलाव कर रहे हो, और दूसरी ओर गुरुदेव के आदेशों का उल्लङ्घन
कर रहे हो।



जवन, यद्यपि कर्म-द्वारा कभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ तो भी, पवित्र समझा जाता है। (४) वह स्थान है जिसे सद्ग ने शिरकास से छोड़ दिया हो। यदि सद्ग वहाँ फिर आये तो वही स्थान, जिसका पुरातन काल में उपयोग हो चुका था, पवित्र हो जाता है। परन्तु उन्हें अनुष्ठान (कर्म) किये बिना वहाँ रात न बितानी चाहिए। (५) कर्म और धोषणा दोनों द्वारा प्रतिष्ठित भूमि है। इसका वर्णन मूलतत्त्वांस्तिवादनिर्णयकग्रन्थ-कर्मन् में है।

जब इन पाँच पवित्र नियमों में से एक पूरा हो जाय, तब, बृद्ध कहता है कि सब भिक्षु इसमें दुहरा भोग्य हो सकते हैं—(१) भीतर खाना पकाना और बाहर बटोरना; (२) भीतर बटोरना और बाहर पकाना, दोनों शोषरहित हैं।

यदि भूमि की अभी प्रतिष्ठा न हुई हो तो उस स्थान पर लौने या रहने से पाप होता है।

विहार (सद्ग के लिए) निवास-स्थान का एक प्रचलित नाम। इसकी प्रत्येक कोठरी में कच्चा और पका हुआ भोजन रखा जा सकता। यदि विहार में सोने की आता न हो तो उस समय वहाँ रहनेवाले भिक्षुओं बाहर जाकर किसी दूसरी जगह निवास करना चाहिए भारत में सम्प्रदायगत रीति सारे विहार को 'पाकशाला' के रूप में प्रतिष्ठित करने की है, परन्तु इनके एक भाग को लेकर उससे पाकशाला का काम लेने की भी आता बृद्ध ने की है।

यदि कोई व्यक्ति अपने कपड़ों की पवित्रता की रक्षा के लिए स्नान की प्रतिष्ठा किये बिना विहार से बाहर सो जाता है तो वह निन्दनीय है। कपड़ों की पवित्रता की रक्षा के लिए धर्मसंगत स्थानों वृक्षों के नीचे की जगहों (या गाँव में) इत्यादि के बीच भेद है।

स्नान की रक्षा वेपथु विषयों से रखवाली के विचार से ही नहीं क्योंकि (स्त्री) सेविका कभी-कभी पाकशाला के भीतर आ जाती है, और फिर भी (प्रतिष्ठित) पाकशाला घाम नहीं समझा जाता, (इस

प्रकार स्थितियों को छोड़कर प्रतिष्ठित होने पर भी स्थान परिवर्ध होता है।) जब मनुष्य गाँव में जाता है तब उसके पास तीन चीजों का होने का तात्पर्य स्थितियों में अपनी रक्षा करना नहीं होता। तब जनरान (विहार के छोटे अधिकाता) का तीन चीजों के साथ विहार के राज्यों की बेतमन करना, विचारना तब कोई स्त्री भीतर लावे, एक बहुत बड़ी चीज है।

[१४]

पाँच परिपद्धों का ग्रीष्म-एकान्त (वर्ष)

पहला ग्रीष्म-एकान्त पाँचवें चन्द्र के वृष्णवर्ष के पहले दिन होता है, और दूसरा ग्रीष्म-एकान्त छठवें चन्द्र के वृष्णवर्ष के पहले दिन; केवल इन्हीं दो दिनों में ग्रीष्म-एकान्त आरम्भ करना चाहिए। इन दो के बीच ग्रीष्म-एकान्त को किसी और दिन आरम्भ करने की पुस्तक में आज्ञा नहीं। पहला ग्रीष्म-एकान्त आठवें चन्द्रमा के मध्य में समाप्त होता है, और दूसरा नवें चन्द्रमा के मध्य में समाप्त होता है। जिन दिन ग्रीष्म-एकान्त बन होता है, भिक्षुगण और समाज्य भक्तजन पूजा की महाप्रतिष्ठा करते हैं। उक्त समय एक सप्ताह होती है।

विनय (विनय-मंडल, अध्याय ७) में कहा है—यदि (बाहर जाने के लिए) उचित अवसर हो, तो मनुष्य को एक दिन की अनु-पत्ति के लिए आज्ञा लेनी चाहिए।' इस वचन का अर्थ यह है कि क्योंकि मनुष्य को बहुत-से अवसर (अर्थात् भोजन के लिए निमन्त्रण, या कोई दूसरे काम) मिलते हैं इसलिए उसे अपने दिनों की अनुपत्ति की आज्ञा लेनी चाहिए, अर्थात् एक रात में करनेवाले काम के लिए मनुष्य को एक दिन की आज्ञा लेनी चाहिए, और इसी प्रकार मत्त दिन तक (आज्ञा ली जा सकती है), परन्तु मनुष्य निम्न-निम्न व्यक्तियों के साथ ही जा सकता है। यदि (जब मनुष्य को मिलने का) दूसरी बार अपेक्षित हो तो विनय कहती है कि मनुष्य को दूसरी बार आज्ञा

भिक्षुगण मेघों अथवा कुहरे के सदृश इकट्ठे हो जाते हैं। वे लगातार दीपक जलाते और धूप तथा पुष्प चढ़ाते हैं। अगले दिन सबेरे वे सब ग्रामों और नगरों के गिर्द जाते हैं और सचवे हृदय में सारे चैत्यों का पूजन करते हैं।

वे छत्तादार गाड़ियाँ, पालकियों में प्रतिमाएँ, ढोल और आकाश में गुंजते हुए दूसरे बाजे, नियमित प्रम में (मूलार्थतः बड़े हुए और सजे हुए) और चढ़ाये हुए, सूर्य को टंकते और लल्लोपत्तो करते हुए भ्रष्टे और छत्र लाते हैं, यह 'सा-मा-किन-ली' (सामग्री) कहलाता है, जिसका अनुवाद 'मिल' या 'भीड़ लगाना' है। सभी बड़े उपवसथ-दिन इस दिन के मद्दह होते हैं। पहले पहर के आरम्भ में (प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक) वे विहार में बापस आ जाते हैं। दुपहर को वे महोपवसथ-प्रश्रिया करते हैं, और तीसरे पहर हाथों में ताटा नागरमोषा का गुच्छा लिये इकट्ठे हो जाते हैं। इसकी हाथों में पकड़कर या पैरों के नीचे रोंदकर जो उनकी इच्छा होती है, करते हैं, पहले भिक्षु, फिर भिक्षुनियाँ; इनके अनन्तर सदस्यों की तीन निम्न श्रेणियाँ। यदि आशंका हो कि संस्था के बड़ी होने के कारण समय बहुत लग जायगा तो संघ अनेक सदस्यों को इकट्ठे जाकर प्रचारण-प्रश्रिया कराने की आज्ञा दे देता है।

इस समय, या तो सामान्य भक्तजन दान देते हैं, या स्वयं संघ उपहार बाँटता है, और सब प्रकार के दान सभा के सामने लाये जाते हैं। सब पाँच पूज्य ध्यवित (पाँचों परिपदों में से एक-एक (?) सभा के मुखियों—स्वविरों) से पूछते हैं—'ये वस्तुएँ संघ के सदस्यों को दी और उनका अपना भोग बनाई जा सकती हैं या नहीं?' स्वविर उत्तर देते हैं—'हाँ बनाई जा सकती है।' तब सब कपड़े, चाकू, सुदियाँ, मुतरियाँ इत्यादि लेकर समान रूप से बाँट दी जाती हैं। (बुद्ध की) शिक्षा ऐसी ही है। इस दिन चाकू और मुतरियाँ भेंट करने का कारण यह है कि वे चाहते हैं कि उनकी ग्रहण करनेवालों को (तीक्ष्ण) बुद्धि और प्रज्ञा मिले। जब इस प्रकार प्रचारण समाप्त हो

छड़ी का टुकड़ा लो; गिरे में चार अंगुल पर इसे, छड़ी के मुनिये के रूप में, भुजाओ। इसका टोंग गिरा ऊपर की उठा रहे चानु साथ ही दूसरा (सम्बा) गिरा छड़ी के सम्बन्ध भाग में जलग न होने पावे। सम्बाहू को, जब छड़ी के सम्बन्ध गिरे की भूमि के साथ रक्खा जाता है, तब इसके सम्बन्ध भाग की छाया छड़ी के दिगन्ततम भाग पर पड़ती है। पहनेवाली छाया को चार अंगुल के साथ मापा जाता है। यदि छाया टोंग चार अंगुल भर सम्बो हो तो यह मात्र एक पुरख (दीख)* कहलाती है, और इस प्रकार समय की मात्र इनके पुरख या कभी-कभी एक पुरख और एक अंगुल या आध अंगुल, या बेवत एक अंगुल इत्यादि (जब टोंग एक पुरख के बराबर मात्र न हो) चलती रहती है। इस रीति में (समय के भेद) अंगुलों की गिनाने और छटाने में जाने और सम्बन्धे जाते हैं।

(ईन्तिङ्ग की टोंग)—पुरख का अर्थ है 'मनुष्य'; चार अंगुल मात्र की छाया को 'एक-पुरख' कहने का कारण यह है कि जब सम्बन्ध छड़ी, जो स्वयं चार अंगुल होती है, की छाया भी दिगन्ततम छड़ी पर सम्बाई में चार अंगुल हो, तब भूमि पर पड़नेवाली मनुष्य की छाया उतनी ही सम्बाई होती है, जितनी कि उस मनुष्य की वास्तविक उँचाई। जब सम्बन्ध छड़ी की छाया दिगन्ततम छड़ी पर सम्बाई में आठ अंगुल हो, तब भूमि पर पुरख की छाया उसके शरीर की उँचाई से ठीक दुगुनी होगी। यह बात मध्यम परिमाण के पुरख की है; सब जनों की आकाररूप से नहीं। इस रीति से और मात्र भी लो जाती है।

* पुरख का अर्थ, मात्र के रूप में प्राप्त होता है एक मनुष्य की सम्बाई जितने अपनी दाहिं ओर उँगलियाँ फैलाई हुई हो। परन्तु ईन्तिङ्ग के अनुसार इसका अर्थ चार अंगुल *।

† ईन्तिङ्ग का यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। सबके साथ इसका एक अंश होना जरूरी है।





साधारणतः जो रोग शरीर में होता है वह बहुत अधिक खाने से होता है, परन्तु कभी-कभी यह अति परिधन, या पहला मोहन पचने के पूर्व ही दुबारा खा- लेने से उत्पन्न हो जाता है; जब रोग इस प्रकार उत्पन्न होता है तब इसका परिधान विपरीत होता है, जिसके कारण मनुष्य को कई रातों तक लगातार पीड़ा-बुझि से दुःख उठाना पड़ता है ।

वास्तव में ऐसे परिधान स्वल्प होनेवाले रोग के कारण को न जानने और औषध करने (मूलायंत्र-शान्त करने और रसा करने) की विधि को न समझने से पैदा होते हैं। कहा जा सकता है कि लोग बिना हेतु के खाने रोगमुक्त होने की आशा करते हैं, ठीक उन लोगों के सदृश जो, उत्पन्ना को बन करने की इच्छा रखते हुए, इसके मोते पर बाँध नहीं बाँधते; या उन लोगों के सदृश जो वन को काट डालने की कामना करते हुए, वृक्षों को उनकी लड़ों से नहीं गिराते, किन्तु धारा या कौपलों को अधिक से अधिक बढ़ने देते हैं ।

क्या यह खेद की बात नहीं है कि रोग मनुष्य को उतना वर्ज्य और अयत्नान करने से रोक देता है ? मनुष्य के लिए अपने गौरव तथा प्रसाद को लो बँटना वास्तव में कोई छोटी बात नहीं, इसलिये मैं उप-सूचन बातों का वर्णन कर रहा हूँ जिन्हें मुझे लागू है कि पाठक एक सुरभि पुनरावृत्ति बताकर आपत्ति नहीं करेंगे । मैं चाहता हूँ कि एक पुराना रोग बहुत सी औषधियाँ खर्च किये बिना ही शान्त हो जाय और नया रोग एक खान, और इस प्रकार बंध की आशयवता न हो;— तब शरीर (अर्थात् शरीर मूलों) की स्वल्प अवस्था और रोग के अभाव की आशा की जा सकती है । यदि लोग, विशिष्ट-वास्तव के अध्ययन से बुद्धि का तथा अपना हित कर सकें तो क्या यह उपकार की बात नहीं है ?

* मूलायंत्र—‘पाद का मोहन पचने के पहले सबरे का मोहन, और सबरे का मोहन पच जाने के पहले दोहर का मोहन खाने से ।’

उस देश के सर्वोच्च भागों के लोग इसी पर खसने हैं । इसमें सबसे महत्व का नियम उपवास है ।

विषय, जैसे कि शीप के बाटे को धिन्धिया उपवास रीति में नहीं बननी चाहिए । उपवास की अवस्था में, सूखा और काम बनना दिन-बुन मोड़ देना चाहिए ।

सो मनुष्य अपनी यात्रा कर रहा है, उसे उपवास में खाने से कोई हानि नहीं; परन्तु जिस रोग के लिए वह उपवास कर रहा हो, वह जब निवृत्त हो जाय, तब उसे अत्यन्त दिव्याम करना चाहिए, और ताजा उबला हुआ भात पाना और भरी भाँति उबला हुआ कुछ मसूर का जल किसी मसाले के साथ मिलाकर पीना चाहिए । यदि कुछ ठण्ड मालूम हो तो शीघ्रतः जल को कुछ काशी गिरा, अदरक या पिप्पली के साथ पीना चाहिए । यदि जुकाम मालूम हो तो बासमती प्याठ (पलायडु) या अंगली गई लपानी चाहिए ।

चिकित्सा-शास्त्र में कहा है—‘मोठ के सिवा चरपरे या गरम स्वाद की कोई भी चीज सरदी को दूर कर देती है ।’ परन्तु यदि दूसरी चीजों को में साथ मिला लिया जाय तो भी अच्छा है । जितने दिन उपवास शिवा हो उनमें दिन शरीर को शान्त रखना और विभ्राम देना चाहिए । ठण्डा जल न पीना चाहिए; दूसरे भोजन बंद के परामर्शानुसार करने चाहिए । यदि खावलो का पानी पिया जायगा तो कफ के बढ़ने का डर रहेगा । ठण्ड के रोग में खाने से कुछ हानि न होगी; ज्वर के लिए दंष्टक का बवाय यह है जो बड़वे गिनझ (Aralia quinquifolia की जड़) को भली भाँति उबालने से तैयार होता है ।

खाय भी अच्छी है । मुझे अपनी जन्म-भूमि की छोड़े घीम से अधिक बंद घीम चुके हैं, और बेघल यह सार गिनसेझ का बवाय ही मेरे शरीर की सौप्य रही है और मुझे बर्दाचित ही कभी कोई घोर रोग हुआ है ।

यद्यपि चीन में (रात के समय) पाँच पहर, और भारत में चार पहर होते हैं, परन्तु विनेता की शिक्षा के अनुसार, केवल तीन ही पहर हैं, अर्थात् एक रात तीन भागों में विभक्त की गई है। पहले और तीसरे में स्मरण, (प्रार्थनाओं का) जाप, और ध्यान किया जाता है; और मध्य-वर्ती पहर में भिक्षुगण, अपने विचारों को बाँधकर (या, एकाग्रता के साथ) सोते हैं। रोग की अवस्था को छोड़कर, जो ऐसा नहीं करते वे नियम को भंग करने के अपराधी ठहरते हैं, और यदि वे इसे पूजा-भाष से करते हैं तो इससे उनका अपना और दूसरों का भला होता है।

[२८]

पूजा की पवित्र वस्तुओं को साफ़ करने में आचित्य के नियम

तीन पूज्यों (तीन रत्नों) की पूजा से बढ़कर और कोई पूजा विनीत और पूर्ण प्रज्ञा के लिए चार आर्य-सत्त्यों के ध्यान से उच्चतर और कोई सङ्कष (हेतु) नहीं। परन्तु इन सत्त्यों के अर्थ इतने गम्भीर हैं कि वे गँवार लोगों की समझ से दूर हैं, परन्तु पवित्र प्रतिमा (अर्थात् मृदु की मूर्ति) को सब कोई स्नान करा सकता है। यद्यपि गुरुदेव निर्वाण को प्राप्त हो चुके हैं, परन्तु उनकी प्रतिमा मौजूद है और हमें आस्था के साथ उसका पूजन करना चाहिए, जैसे कि हम उन्हीं के सामने हों। जो लोग उसे निरन्तर धूप और पुष्प चढ़ाते हैं, उनके विचार पवित्र हो जाते हैं और जो लोग उत्तरी मूर्ति को सदा स्नान कराते हैं, वे अन्धकार* में सपेटने-वाले अपने पापों को दवाने में समर्थ हो जाते हैं। जो लोग अपने आपकी इस काम में लगाते हैं, उन्हें अदृश (अविज्ञप्त) पुरस्कार मिलेंगे, और जो लोग दूसरों को इसके करने का उपदेश देते हैं, वे वृक्ष (विज्ञप्त) कर्म से अपना तथा दूसरों का भला करते हैं। इसलिए जो लोग पुण्योपाजन

* मूलार्थतः 'आलस्य से उपजा हुआ कर्म';

की कामना रखते हैं, उन्हें अपने मन को इन कर्मों के करने में ब्यापित चाहिए ।

भारतीय बिहारों में, जब भिक्षु लोग अपराह्न में प्रतिभा की लाल कराने जाते हैं, तब घोषणा के लिए कर्मदान घंटा बजाता है । घिरे के भागन में एक जड़ाऊ छत्र तानने, और मंदिर के वाजं में दुर्गा जल के घड़े पवित्रियों में रखने के पश्चात् सोने, चाँदी, ताम्र, या काँच । एक मूर्ति उसी घातु के वासन में रखी जाती है, और लड़कियों का बाल वहाँ बाँधा जाता है । फिर मूर्ति का मुग्ध से अभिषेक का उसपर मुगम्भित जल डाला जाता है ।

मुग्ध इस प्रकार तैयार की जाती है—कोई मुग्ध का बूझ, कि चन्दन की लकड़ी या एलवा की लकड़ी लेकर एक छिपटे पत्थर पानी के साथ पीसो, वहाँ तक कि इसका कोयल बन जाय, तब इसे गुँथ मलकर उसे पानी में धो डालो ।

घो चकने के बाद, इसे साँझ सफेद कपड़े में पोंछ दिया जाता है; बि यह मंदिर में रख दी जाती है, जहाँ सब प्रकार के मुग्ध पुण्ड्र बना जाते हैं । यह प्रक्रिया बिहार में रहनेवाले भिक्षु कर्मदान के प्रथम में करते हैं ।

बिहार के अकेले कमरों में भी भिक्षु लोग प्रतिदिन मूर्ति को दो सावधानी से स्नान कराते हैं कि कोई भी प्रक्रिया छूटने नहीं पाती जब पुण्ड्रों के विषय में मुनि । किसी भी प्रकार के फूल, दूर्गों से व पीपों से लेकर चढ़ाये जा सकते हैं । मुगम्भित फूल सभी अनुष्ठान निरन्तर मिलते हैं और अनेक लोग ऐसे हैं जो बाजारों में उन्हें बेचते हैं ।

ताम्र की मूर्तियों को, चाहे वे बड़ी हों या छोटी बारीक राख व ईंटों के बूँत के साथ रगड़कर और ऊपर गुँथ बाल डालकर, चमकाया चाहिए, वहाँ तक कि वे दर्शन के लक्षण पूर्ण रूप से स्पष्ट और मुग्ध हों जायें । बड़ी मूर्ति को मात के मध्य और अन्त में सारा भिक्षु-संघ स्नान करावे और छोटी मूर्ति को, यदि सम्भव हो तो, प्रतिदिन अत्येक भिक्षु

जोना मरता है । ऐसा करने में, मनुष्य छोड़े सब में बड़ा दुःख प्राप्त कर सकता है ।

जिन उन में मूर्ति हो मान करता है, उन उन की परि दो वेदियों पर लेकर फिर पर डाल दिया जान तो वह भूमि भूमि का प्रतीक बनता है, जिसमें मनुष्य सौभाग्य की कामना कर सकता है । मूर्ति पर चढ़ते हुए पुत्रों की न तो मूर्ति बनाई, और न, जब वे उठा भी जिने वाले, उन्हें न पोंद के नीचे रोकना चाहिए; उन्हें तो एक स्थिर स्थान में जगह रख देना चाहिए । भिक्षु के सारे जीवन में ऐसा काम न होना चाहिए कि वह मूर्ति को स्पर्श करना भूल जाय और यदि वह उन सुन्दर पुत्रों की भी चढ़ते की परवा नहीं करता, तो वह क्यों लोगों में जाने जाते हैं, तो योंही है । जने पुत्रों की बुद्धि और मूर्तियों की मरता है के बाद में बचकर, केवल उद्योगों और मरौदों की देखने तथा विधान करने हुए हैं, जानकी और सिद्धि न हो जाना चाहिए और न जने पुत्रों के हमारे की केवल सौन्दर्य और सामान्य उद्योगों करके अपनी पुत्रों की आत्मशुद्धि मानान कर देना चाहिए । यदि ऐसी अवस्था होगी तो वह और जिन की परम्परा दूध बाणों और पुत्रों की रीति मान-धर्म के अनुसार न होगी ।

भारत में भिक्षु और सामान्य लोग भिक्षु के बंधन या मूर्तियों बनाते हैं, अथवा रोमन या क्राइस्ट पर बुद्ध की प्रतिमा छापते हैं और वहाँ वहाँ वे जाते हैं, चढ़ाया चढ़ाकर उल्लास पुत्र करते हैं । हमेशा-भी वे सिंग बनाकर और जने इन्हीं के मान घेरकर बुद्ध के स्तूप बनाते हैं । हमेशा-भी वे इन स्तूपों की दुकानें मंदिरों में बनाकर छोड़ जाते हैं और वे फिर-फिर से छेड़ हो जाते हैं । इन प्रकार कोई भी मनुष्य पुत्रों की चोटें बनाने में लप मरता है । फिर जब लोग मोने, चारों, लंबे, लोहे, मिट्टी, लाल, इन्हीं और पत्थर की प्रतिमाएँ और बंधन बनाते हैं, अथवा लव दे हिन्दु बालक (मूलार्थक बालु-हिन्) का डोर लगाते हैं लव

स्तोत्रगान-प्रक्रिया

बुद्ध के नामों का उच्चारण करके उसकी पूजा करने की रीति दिव्य भूमि (चीन) में लोग जानते हैं, क्योंकि यह प्राचीन समय से चली आ रही है (और इसका अनुष्ठान किया जा रहा है) परन्तु बुद्ध का गुणानुवाद करके उसकी स्तुति करने की रीति का प्रचार यहाँ नहीं रहा। शेषोक्त रीति प्रयनोरत से अधिक महत्त्व की है, क्योंकि वास्तव में, केवल उसके नामों का सुनना ही उसके ज्ञान की स्पष्टता का अनुभव करने में हमें सहायता नहीं देता; किन्तु वर्णनात्मक स्तोत्रों में उसका गुणानुवाद करने से हम समझ सकते हैं कि उसके गुण कितने बड़े हैं। पश्चिम (भारत) में भिक्षु लोग चर्य-वन्दन और साधारण पूजा तीसरे पहर केर से या सायंकाल सन्ध्या-समय करते हैं। सभी एकत्रित भिक्षु अपने विहार के द्वार से बाहर निकलकर, धूप और पुष्प चढ़ाते हुए, स्तूप की तीन बार प्रवक्षिणा करते हैं। वे सब घुटनों के बल बैठ जाते हैं, और उनमें से अच्छा गानेवाला एक भिक्षु, धृतिमधुर, दृढ़ और मंजुल स्वर से गुरुदेव के गुणों का वर्णन करनेवाला स्तोत्र गाना आरम्भ करता है, और दस-बीस श्लोक गाता है। तब वे धम्मः विहार के उस स्थान में लौट आते हैं, जहाँ वे साधारणतया इकट्ठे हुआ करते हैं। जब वे सब बैठ जाते हैं तब एक सूत्र-पाठी, सिंहासन पर चढ़कर, एक छोटा-सा सूत्र पढ़ता है। यथोचित परिमाण का सिंहासन प्रधान भिक्षु के समीप रक्खा जाता है। ऐसे अक्षर पर जो धर्मग्रन्थ पड़े जाते हैं। उनमें से 'तीन भागों में पूजा' * प्रायः उपयोग में लाई जाती है। यह पूजनीय अद्वयधोष का किया हुआ संग्रह है। पहले भाग में, जो दस श्लोकों का है, तीन पूज्यों (श्रित्त) की स्तुति का भजन है। दूसरा भाग बुद्ध-वचनों की बनी हुई कुछ पवित्र पुस्तकों का संग्रह है। स्तोत्र के बाद, और बुद्ध के वचनों के पाठ के बाद, पूजा के

* मूलार्पणः तीन बार खोली हुई पूजा।

के लिए पूजा केवल जन्म-जन्म ही हो सकती है। इसलिए रीति यह है कि प्रतिदिन एक स्तोत्र पढ़नेवाले को भोग जाता है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भजन पावा हुआ घूमता है। उसके आगे-आगे धूप और कुल गिने हुए विद्या के साधारण मेख और बरखे जाते हैं। वह एक मरुताता से दूसरी में जाता है, और आयेक में पूजा के भजन पाता है। वह हर बार उच्च स्वर से मन्त्र पढ़े स्तोत्र बोधता है और उसकी कावाड धारों और सुनाई देती है। संन्या-जानक वह इस कर्तव्य की समाप्ति कर देता है। इस स्तोत्रपाठ की विद्या की ओर से प्रायः कोई विशेष पूजा (भेंट) दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अनुष्ठान हैं, जो मन्द-कुटी (मंदिर) की ओर मंद स्थान, अर्थात् बड़े हुए, हरम में हुए का पुनर्जात करते हैं। कुछ दूसरे लोग ऐसे हैं, जो मंदिर में जाकर (एक छोटे से दल में) अपने शरीरों की सौधा रखने हुए एक-दूसरे के साथ घुड़नों के बल बैठ जाते हैं, और अपने हाथों की पृथ्वी पर रखकर अपने नितों से पृथ्वी को छूने हैं, और इस प्रकार 'विशुद्धि बन्धन' करते हैं। ये हे पूजा की विधि की परिचय में (अर्थात् भारत में) प्रवर्तित हैं। बड़े और दुर्लभ भिक्षुओं को पूजा करने समय छोटी-छोटी बटाइयों का उप-योग करने की जाता है। अन्तिम (वीन में) कुछ की प्रज्ञा के भजन विरहात से विद्यमान हैं, परन्तु ध्यावर्तित प्रयोजन के लिए उनके उपयोग की रीति भारत (मुगलक 'इस्लाम') में प्रवर्तित रीति से कुछ भिन्न है।

यह सब है कि जब स्वर की बहुत सम्भा कर दिया जाता है, तब पढ़ने हुए भजन का अर्थ समझना कठिन होता है। परन्तु एक निम्न

* वे उपासक जो भिक्षु के निवास पर मुख्य धर्मिकों के आचरण के लिए जाते हैं, और जिनका इच्छा करने बाद मुझने और बलि, बोला पढ़ने की होती है, बरखे (अर्थात् भजन) कहलाते हैं।

उन्ने उनकी प्रशंसा में स्तोत्र बनाये थे । परन्तु इन बात का क्या मत देने पर कि उनके जन्म की भविष्यवाणी हो चुकी है, वह रंगदार दोनो गुरुवर बौद्ध-धर्म का अनुयायी बन गया, और सामाजिक विचारों से मुक्त हो गया । वह दृष्टा दुष्ट की प्रशंसा तथा बौद्धि-मान में ही अपना रक्षा और अपने विचारों के लिए परचारा बनाना था । तब से वह दुष्ट के उत्तम दृष्टान्त पर चलने का अभिलाषी रहना था, और उसे रोह होना था कि मैं ब्रह्म गुरु (दुष्ट) की बेहम प्रशंसा ही देना सही है, स्वयं उनके हठान नहीं कर सका, इन भविष्य बचन (वाक्य) की भविष्य में उन्ने अपने पूरे साहित्यिक बन से दुष्ट के अनुयायी की प्रशंसा के भजन चिते ।

उन्ने अपने एक चार नौ स्तोत्रों का स्तोत्र बनाया, और तत्पश्चात् एक दूसरा हेतु भी स्तोत्रों का । वह प्रत्येक पारमिनी का दर्शन और बलवान् दुष्ट के उत्कृष्ट गुणों की व्याख्या करता है । ये मनोरंजक स्तोत्रों सुन्दरता में स्तोत्रों पुण्यों के स्तनान है, और उनमें बर्णित उच्च विद्वान् महात्म्य में परम के उच्च गिरावों की प्रशंसा करता है । जड़द्वारा भारत में जो भी स्तोत्र बनाया है वह, उन्ने साहित्य का निरा मनमोह, उन्ने की शैली का अनुकरण करता है । यहाँ तक कि बौद्धिन्स्व अर्थ और अनुयायी जैसे अनुयायी ने भी उनकी बड़ी प्रशंसा की है ।

स्तोत्र भारत में यह रीति है कि निम्न बननेवाले प्रत्येक अनुयायी को, जो है वह पाँच और इन शीत गुण सहा है, मानवों के दो भजन निजका दिने जाते हैं । यह इन महात्मान् जोत हीनमान् दोनों मन्त्रवाणी में प्रचलित है । इसके एक कारण है । पहले, इन स्तोत्रों में हमें दुष्ट के महान् और मनोरंजक गुणों का ज्ञान हो जाता है । दूसरे, उनमें हमें स्तोत्र बनाने का एक मानव

में याद कर लेते हैं, परन्तु बहुत पक्के भवत आयु-वयस्क होते अपने स्वयं का एक विशेष विषय बना रखते हैं। जिस प्रकार, चीन में, बुद्ध भिक्षु गण अवलोकितेश्वर के विषय में सूत्र (सद्धर्म-सुण्डरीक में अध्याय २१) और बुद्ध का अन्तिम वचन (संक्षिप्त महापरिनिर्वाणसूत्र) होते हैं। ज्ञानकमाला नामक इसी प्रकार का एक दूसरा ग्रन्थ है। ज्ञान का अर्थ है 'पूर्व जन्म', और 'माला' का 'हार'; भाव यह है कि बौद्ध-मत्त्व (पीछे से बुद्ध) के पूर्व जन्मों में किये हुए कठिन कार्यों की कसौटी एक स्थान में पिटोई गई है। जन्म-कथाओं की रचना पद्य में करन का उद्देश्य एक सुन्दर गीतों में, जो सर्वनाथारण्य की प्यारी और पाठकों को चित्ताकर्षक प्रामाण्य हो, सार्वजनिक धर्म की शिक्षा देना है। एक बार राजा शालाहिर्य* ने, जिसने साहित्य से अत्यन्त प्रीति थी, आज्ञा दी— 'हे कविता के अनुसूचियों, कथन करने अपनी कुछ कविताएँ लाकर मुझे दिखलाओ।' जब उसने उन्हें इकट्ठा किया तब उनकी पवित्र मो गठारियाँ बनीं, और परोक्षा करने पर, जान बूझ कि उनमें से बहुत ही ज्ञान-प्रामाण्य है। इस कृतान्त से समुच्च समझता है कि ज्ञानकमाला प्रसिद्धात्मक कविताओं के लिए सबसे सुन्दर (विषय) विषय है। राजा शालाहिर्य ने बाधिमन्त्र जीमून्वाहन को कथा को, जिसने एक मास के स्थान में अपने आपको लीव दिया था, इच्छुकबद्ध किया था। इस अनुवाद को मङ्गल (अर्थात्, तार भी बागुरी) का कथ दिया गया था। वह इसे बाधों के साथ गवाता था और साथ-साथ सुन्द और अभिनव भी होता था। इस प्रकार उसने इसे अपने समय में सर्वप्रिय बनाया। महाभारत चण्ड (अर्थात्, 'चण्ड अधिकारी', सम्भवतः चण्ड-राम) ने जो पुराणी भारत में एक विद्वान् समुच्च था, राजा विशाल्वर के विषय में, जिसे अक्षतक मुद्रान कहा जाता है, एक काव्यमय गीत की रचना की और भारत के राज्यों में सभी लोग इसे गाने गाने लगे हैं।

हैं। यह मनुष्य को व्यवहार में निरालस्य रूप के अनुभव बनाता और उसे निर्वासन प्रदान करता है।

‘परमार्थ-ज्ञान’, ‘मर्मों की गंधार्थ’, ‘संवृति-ज्ञान’, ‘गोप्य या छिपी हुई गंधार्थ’। पुराने अनुवादकों ने शोधोक्त का अर्थ ‘सांसारिक गंधार्थ’ किया है, परन्तु हमारे मूल के अर्थ पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होते। अर्थ यह है कि मानवजन जाने वास्तविक अवस्था को छिपा लेती है, उदाहरणार्थ, पड़े जैसी प्रत्येक वस्तु में, धारतय में केवल मिट्टी होती है, परन्तु फाँट भटे विशेषण में उसे छड़ा समझते हैं। शब्द की अवस्था में सब सफ़र स्वर शब्द ही है, पर लोग भूल में उसे गीत समझते हैं। केवल अन्तरिक बुद्धि ही काम करती है, और कोई व्यक्त विषय नहीं है। परन्तु अविद्या बुद्धि को टंक देती है, और एक विषय के अनेक रूपों की माया-मयी सृष्टि होती है। ऐसी अवस्था होने से मनुष्य नहीं जानता कि मेरी अपनी बुद्धि क्या है, और यह समझता है कि वस्तु का अन्तरिक मन से बाहर है। उदाहरणार्थ, मनुष्य अपने सामने पड़ी हुई रस्ती को साँप समझ सकता है। इस प्रकार साँप की रूपना भ्रान्ति से रस्ती के साथ लगा हो जाती है, और सच्ची बुद्धि घमकने से बन्द हो जाती है। इस प्रकार मर्यादता या सच्ची अवस्था का (भ्रान्त सम्बन्ध से) टंक जाना ‘संवृति’ कहलाता है।

व्याकरण को संस्कृत में शब्द-विद्या कहते हैं। यह पाँच विद्याओं में से एक है; शब्द का अर्थ है ‘वाणी’, और विद्या, ‘विज्ञान’।

* इसे ‘शब्दानुशासन’ भी कहते हैं। म० दत्त।

† पाँच विद्यायें ये हैं—(१) शब्दविद्या, अर्थात् व्याकरण और बन्धनान-रचना, (२) चित्तस्थानविद्या, (३) चिरित्ताविद्या, (४) हेतुविद्या, और (५) अध्यात्मविद्या।

क. गान विभक्तिर्मा । प्रत्येक संज्ञा की गान विभक्तिर्मा, और प्रत्येक विभक्ति के तीन वचन होते हैं, अर्थात् एकवचन, द्विवचन और बहुवचन; इसलिए प्रत्येक संज्ञा के गान मिलकर इकतीस रूप होते हैं । उदाहरणार्थ, शब्द 'पुरुष' की नीति। यदि एक पुरुष में तात्पर्य हो तो यह 'पुरुषः' होता, दो हों तो 'पुरुषौ' और तीन (या अधिक) हों तो 'पुरुषाः'। संज्ञा के इन रूपों को गुरु और लघु (गम्भिरतः, 'स्वरपुरुष' और 'स्वरहीन'), या सुले सांस से और बन्द सांस से उच्चारण विधि जानेवाले (शब्द 'सुली स्वरवाली या बन्द स्वरवाली संज्ञाएँ') भी कहा जाता है । सात विभक्तिओं के अतिरिक्त आठवीं—सम्बोधन (आमन्त्रित)—भी है, जो आठ विभक्तिमा पूरी कर देती है । जैसे पहली विभक्ति के तीन वचन हैं, वैसे ही आठवीं सत्य है । इनके रूप बहुत ब्यादा होने से यहाँ नहीं दिये गये । संज्ञा सुबन्त कहलाती है और (परतिष्ठि से) इसके (३ × ८) बीबीत रूप होते हैं ।

ख. दस सकार । (क्रिया के कालों के लिए) स के साथ दस विहृ है; क्रिया की रूपतिष्ठि (मूलार्थतः उच्चारण) में तीन कालों, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य का भेद प्रकट किया जाता है ।

ग. अठारह तिष्ठ । ये (क्रिया के तीन वचनों के) उत्तम, मध्यम, और प्रथम पुरुष के रूप हैं और योग्य और अयोग्य, या इस और उस* के भेद दिलाते हैं । इस प्रकार (एक काल में) प्रत्येक क्रिया के अठारह भिन्न-भिन्न रूप हैं, जो तिष्ठन्त कहलाते हैं ।

द. वेन-च (मण्ड या मुण्ड में) (धातु की एक या अनेक प्रत्ययों से) संयुक्त करके शब्दों के बनाने का वर्णन है । उदाहरणार्थ, संस्कृत में पेड़

* यहाँ 'आत्मनेपद' और 'परस्मैपद' होना चाहिए था । 'यह और वह' शब्द 'आत्मने' और 'परस्मै' की प्रकट करने की एक अस्पष्ट रीति हो; क्योंकि धीनी में इन परिभाषाओं के लिए कोई पदार्थ नहीं । फिर भी, 'योग्य और अयोग्य' बहुत विविध हैं ।

फिर दूसरे विषय; यदि ऐसा न होगा तो उनका पश्चिम पक्ष दिया जायगा। ये सब उच्च इच्छाएँ होने चाहिए। परन्तु यह नियम उच्च बुद्धि के लोगों के लिए ही लागू है। मध्यम या धोड़ी योग्यता के मनुष्यों के लिए उनकी इच्छाओं के अनुसार एक भिन्न उपाय (विधि) का अध्ययन करना चाहिए। उन्हें दिन-रात घोर पश्चिम के माघ अध्ययन करना, और एक पल भी स्वयं के विधायम में न सोना चाहिए।

यह वृत्ति-भूषण पण्डित जयादित्य* की रचना है। यह बहुत बड़ी योग्यता का मनुष्य था; उसकी साहित्यिक शक्ति बहुत आश्चर्यजनक थी। वह बात को एक ही बार सुनकर समझ लेता था, उसे दुबारा निखाने का प्रयोजन नहीं होता था। वह तीन पूज्यों (अर्पान् विरत्न) का आदर करता था और सदा पुण्य-कर्म किया करता था। उसकी मृत्यु हुए आज कोई तीस वर्ष हुए हैं (सन् ६६१-६६२)। इस वृत्ति का अध्ययन कर सुकने के पश्चात्, विद्यार्थी गद्य और पद्य की रचना सीखना आरम्भ करते हैं और हेतुविद्या तथा अभिधर्म-शेष में लग जाते हैं। न्याय-द्वार-तारक-शास्त्र† के अध्ययन से वे ठीक तौर पर अनुमान करते हैं; और जातकमाला के अध्ययन से उनकी ग्रहण-शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार अपने उपाध्यायों से शिक्षा पाते और दूसरों की शिक्षा देते हुए वे प्रायः मध्य भारत के मालव-विहार में, या पश्चिमी भारत के बलभी (बला) देश में दो-तीन वर्ष व्रतित करते हैं। ये दोनों स्थानों में प्रसिद्ध और प्रवीण मनुष्य

* हमने बामन के माघ मिलकर वागिकावृत्ति की रचना की थी। वागिका का मूलपाठ बनारस-मस्कृत-कालेज में हिन्दू-धर्म-शास्त्र के महोपाध्याय पण्डित बालशास्त्री ने (१८७६, १८७८) प्रकाशित किया था। बालशास्त्री ने १, २, ५ और ६ जयादित्य के और शेष बामन के द्वाहराये हैं।

† यह नागार्जुन की बनाई हुई हेतुविद्या की भूमिका है।

एक ही प्रकार का व्यवहार की रचना है। फिर, इनमें भी एतने कुछ (परिचित) देशों का नाम है जहाँ की व्यापार (मूलभूत) चीजों की रचना है और इनमें बहुत-से विदेशों का विदेशीय नाम है, और यह अनेक विदेशियों को मान्य करने, विदेशी वस्तुओं की व्यापार करने है। और विदेशों को जो लोग वहाँ से चीजें लेते हैं।

७ मरु-हरि-राज

इसके ऊपर मरु-हरि-राज है। यह एक ही प्रकार की चीजों की रचना है और मरु-हरि-राज के एक ही नाम है। इनमें २५,००० इनके हैं और मरु-हरि-राज तथा मरु-हरि-राज के विदेशों का नाम है। यह अनेक देशों के विदेशों और नाम के नामों में बताने है। इसका विदेशों के विदेशों में अनेक चीजें पाई जाती हैं और इनमें से कुछ नाम पर बड़े, कुछ नाम से विदेशों में है। यह विदेशों के नामों में से सबसे बड़ा विदेश का और इनकी विदेशों के नामों में से (अनेक विदेशों में) अनेक

मरु-हरि-राज का नाम है मरु-हरि-राज और मरु-हरि-राज का नाम है मरु-हरि-राज के नाम के नाम में होता है। निम्नलिखित इनका नाम मरु-हरि-राज के नामों में है।

* यह मरु-हरि-राज के नामों को बताने का नाम है। अनेक विदेशों में मरु-हरि-राज के नामों को बताने का नाम है। यह विदेशों की विदेशों का नाम है। यह मरु-हरि-राज के नामों की कोई भी विदेशों के नामों पर है। — मरु-हरि-राज।

* यह मरु-हरि-राज के नामों का नाम है। इनके नामों के नामों में से कुछ नामों की ही विदेशों का नाम है। इनके नामों का एक ही नाम है। यह मरु-हरि-राज के नामों का नाम है। यह मरु-हरि-राज के नामों का नाम है। यह मरु-हरि-राज के नामों का नाम है। — मरु-हरि-राज।

वि गृहस्थों में लौट जाने की हुई। परन्तु यह दृढ़ रहा और उत्तने के विद्यार्थी को मठ के बाहर एक गाड़ी खाने को रहा। बारण पूछने पर उत्तने उत्तर दिया—‘यह वह स्थान है जहाँ मनुष्य पुण्य-कर्म करता और यह उन लोगों के निवास के लिए है जो शील रखते हैं। अब मेरे भीतर मनोरोग पहले ही प्रदल हो चुका है और मैं सर्वोत्तम धर्म पर चलने में असमर्थ हूँ। मेरे जैसे मनुष्य को प्रत्येक प्रदेश से यहाँ आने पर परिव्राजकों की समा में घुसना नहीं चाहिए।’

तब वह उपासक को अवस्था में वापस खला गया और मठ में पहुँचे हुए, एक श्वेत वस्त्र पहनकर, सच्चे धर्म की उत्पत्ति और वृद्धि करता रहा। उसकी मृत्यु हुए घालीत वर्ष हुए हैं (सन् ६५१-६५२)।

८ वाक्य-पदीय

इनके अतिरिक्त वाक्य-पदीय हैं। इसमें ७०० श्लोक हैं, और इसका टीकाभाग ७,००० श्लोकों का है। यह भी भर्तृहरि की ही रचना है। यह पवित्र शिक्षा के प्रमाण-द्वारा समर्थित अनुमान पर, और व्याप्ति-निश्चय की युक्तियों पर, एक प्रबन्ध है।

पाठों के मिलाने के बाद, जाननी संस्करण ने ‘धर्मपाल’ रक्ता है, और एक ही पुस्तक में मिलनेवाले ‘धर्म’ के अनेक उपाध्याय पाठ को छोड़ दिया है। ‘धर्मपाल’ पाठ के विषय में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं। दुर्भाग्य से न० फूर्वाजीना के पास एक बुरी पुस्तक थी, और उसने अनिश्चित रूप से अनुवाद किया है। ऊपर का लेख लिख चुकने के बाद मैंने देखा है कि काश्यप के पाठ में ‘शास्त्र’ का एक उपाध्याय, ‘धर्मपाल’ है। इससे भी हमारे पाठ धर्मपाल की पुष्टि होती है, और किसी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं रह जाती।

प्रकट दृष्टा करते हैं। उनकी उपमा सूर्य और चन्द्र से होती है, या उन्हें नाग और हाथी* की तरह समझा जाता है। पहले समय में नागार्जुन, देव, अय्योय; मध्यकाल में बुद्धगुप्त, सतझ, सङ्गनर और भवविदेक; और अन्तिम समय में जिन धर्मपाल, धर्मशीति, शीलनर, सिंहबन्ध, स्थिरमणि, गुणमणि, प्रज्ञागुप्त ('मतिपाल' नहीं), गुणप्रभ, जिनप्रभ (या 'परमप्रभ') ऐसे मनुष्य थे।

इन महोपाध्यायों में से कितनी में उपर्युक्त प्रकार के सद्गुणों में से कितनी एक की भी, चाहे वह सांसारिक हो या धार्मिक, कमी नहीं। ये मनुष्य लोग से रहित होकर, आत्मसन्तोष का अभ्यास करते हुए, अनुपम जीवन बिताते थे। ऐसे चरित्र के मनुष्य नास्तिकों अथवा दूसरे लोगों में बहुत कम पाये गये हैं।

[इ-तिहस की टीका]—इनके जीवन-चरित, भारत के इन धर्मशीत मनुष्यों (या भक्तों) की 'जीवनी' (जिन—जिनप्रभ) में सविस्तर दिये गये हैं।

धर्मशीति ने ('जिन' के परचातु) हेतुविद्या की और सुधारा; गुणप्रभ ने विनय-पिटक के अध्ययन को दुबारा लोकप्रिय बनाया; गुणमणि ने अपने आपको ध्यान-सम्प्रदाय के अर्पण कर दिया और प्रज्ञागुप्त (मतिपाल नहीं) ने सभी विद्वानों की काखें भरकर सच्चे धर्म का प्रतिपादन किया। जिस प्रकार अनूद्य रत्न अपने सुन्दर बगों का प्रकाश शिस्तियों और अपार सागर में करते हैं, जहाँ बेबल हूल मछलियाँ ही रह सकती हैं; और जिस प्रकार जीवपीय जड़ों-बूटियों अपने सर्वोत्तम गुण अपरिमेय उंचाईवाले गन्धनावन पर्वत पर उपस्थित करती हैं, उसी

* व स्पष्ट कहा है कि वह 'नाग और हाथी' नहीं, किन्तु वह 'नाग-हाथी' है। क्योंकि सबसे अच्छे प्रकार का हाथी 'नाग' कहा जाता है। उसका बदन ठीक जान पड़ता है; ऐसा ही पालि में ऐसे नाग महानज्वा (ममन्-पानादिका; पृष्ठ ३१३) हैं।

में कुछ ऐसे दाहण रहते हैं जो १,००,००० मन्त्रों को सुना सकते हैं। प्रबल मानसिक शक्ति प्राप्त करने के लिए भारत में दो परम्परागत रीतियाँ हैं। एक तो, बार-बार कण्ठस्थ करने से बुद्धि विकसित हो जाती है; दूसरे, घण्टमाला मनुष्य के विचारों को स्थिर कर देती है। इस रीति से, दस दिन या एक मास के अभ्यास के अनन्तर, विद्यार्थी अनुभव करता है कि उसके विचार धरने के सदृश उठ रहे हैं, और जिस बात को उसने एक बार सुन लिया है उसे वह कण्ठस्थ कर सकता है (उसे दुबारा पूछने की आवश्यकता नहीं रहती)। यह कोई कल्पित कथा नहीं, क्योंकि मैंने स्वयं ऐसे मनुष्य देखे हैं।

पूर्वो भारत में चन्द्र नाम का (मूलार्थतः, 'चन्द्र-अधिकारी', शायद यह 'चन्द्रदास' हो) एक महापुरुष रहता था। वह बोधिसत्त्व के सदृश महान्ति था। जब मैं, इ-स्तित्झ, उस देश में गया था तब वह अभी जीता ही था। एक दिन एक मनुष्य ने उससे पूछा—'बीन-सा अधिक हानिकारक है, प्रलोभन या विष ?' उसने तत्काल उत्तर दिया—'वास्तव में, इन दो में बड़ा भेद है; विष केवल उन्नी समय हानिकारक होता है जब उसे खा लिया जाय, परन्तु दूसरे के चिन्तन-मात्र से ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है'।

बादयप-भातंग और धम्मरस* ने पूर्वो राजधानी लो (होनन-ऊ) में सुत्तमाधार का प्रचार किया; परमार्या† की कीर्ति दक्षिणी सागर (अर्थात् ननकिङ्ग) तक पहुँची थी, और पूजनीय कुमारजीव‡ ने विदेश (चीन)

* ये चीन में पहले दो भारतीय बौद्ध थे; वे चीन में सन् ६७ में आए और उन्होंने अनेक सूत्रों का अनुवाद किया। Nanjio's App. ii, 1 and 2.

† परमार्या चीन में सन् ५४८ में आया, और उसने दशतीस ग्रन्थों का अनुवाद किया।

‡ कुमारजीव चीन में सन् ४०१ के लगभग आया, और उसने पचास सत्सुसुत्तों का चीनी में अनुवाद किया। Nanjio's App. ii 59, 104—105.

के सामने धर्मशीलता का आदर्श उपस्थित किया था। पीछे से ज्ञान
 हून-यमाङ्ग स्वदेश में अपना व्यवसाय करता रहा। इस रीति से, पूर्व
 और वर्तमान में, आचार्यों ने ब्रह्म-धर्म की ज्योति (या 'ब्रह्म के दूर') में
 दूर-दूर तक फैलाया है।

जो लोग 'भाव' और 'अभाव' के सिद्धान्तों को सीखते हैं उनके नि-
 स्वयं त्रिविधक ही उनका गुरु होगा, और जो लोग ध्यान और ज्ञान
 अभ्यास करते हैं उनके परमार्थिक सात बोधि-अङ्ग* होंगे।

पश्चिम में इस समय रहनेवाले (सबसे विख्यात) आचार्य वे हैं,—
 ज्ञानचन्द्र, जो धर्म का एक गुरु हैं, (मगध में) तिलहरी विहार में रहा
 है, नालन्दा विहार में रत्नसिंह, पूर्वी भारत में दिवाकर मिश्र†, और श्री
 बक्षिणी प्रायत में, तथागतगर्भ रहना हैं। बक्षिणी सागर के भीमोत्र।

* बोधि के सात अंग, अर्थात् स्मरण, निरूपण उत्साह, हर्ष, प्रशान्ति
 चिन्तन और ममचित्तता। इन्हें Childers, S. V. बोधका
 Burnouf कमल, ७९९, Kasawara, परममह, ४९
 महासमुत्पत्ति ३९

† तिलहरी विहार ह्यन्यसाङ्ग का निवास है (Juhen, Memoi-
 res, viii, 440, and Vie, iv 211)। इ-तिहास इस विहार
 को अवन बृत्तान्त में ज्ञानचन्द्र से दो योत्रन की दूरी पर मिलता है (देखें
 Chava nes, p. 140, note)। आधुनिक विन्हार, नालन्दा के
 पश्चिम में। Cf. Cunningham, Ancient Geography of
 India, i, 456.

‡ इन्डियन, (काशीप्रमस्करण ९० ४८८ तथा ४९७) में एक
 दिवाकर मिश्र का बौद्ध मठ के रूप में उल्लेख है। य० बुद्धिनीया रूप
 से गुरुविषय लिखता है। देखो बुद्धियन, (Methode pour Dec-
 iffer les Noms Sanscrits, p. 70.)

२. विद्यासागर-विदित-विद्यासागर-वार्त्ता (समुद्र-सूक्त) ।

३. महाभारत-संग्रह-शास्त्र-सूक्त (समुद्र-सूक्त) ।

४. अभिषेक (समुद्र-सूक्त)-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

५. महाभारत-विभाग-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

६. विद्या-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

७. महाभारत-संग्रह-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

८. वसुधैव कुटुम्बकम्-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

यद्यपि उपर्युक्त शास्त्रों में वसुधैव कुटुम्बकम् के कुछ अर्थ हैं, परन्तु (योग-पद्धति में) सफलता अर्थात् की मानी जाती है (इसलिए अर्थात् के अर्थों में वसुधैव कुटुम्बकम् की पुस्तकों का समावेश है) ।

जो भिक्षु हेतुविद्या में अपने आपको विद्यायुक्त करना चाहता है उसे 'जिन' के आठ शास्त्रों की सम्पूर्ण रूप से सामर्थ्य सेना चाहिए ।

वे ये हैं—

१. तीन लोगों के ध्यान का शास्त्र (मिला नहीं) ।

२. सर्वसंस्तुत-ध्यान-शास्त्र (वार्त्ता) (जिन-सूक्त) ।

३. धिष्य के ध्यान का शास्त्र (जिन-सूक्त) । सम्भवतः आलम्बन-प्रत्यय ध्यान-शास्त्र (नञ्जियो की मामादली, सं० ११७३) ।

४. हेतुद्वार पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

५. हेतुभासद्वार पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

६. व्यापद्वार (सारक)-शास्त्र (सामाजिक-सूक्त) ।

७. प्रज्ञापति-हेतु-संग्रह (?) शास्त्र (जिन-सूक्त) ।

८. एकीकृत अनुमानों पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

अभिषेक का अध्ययन करते समय उसे छः पादों- का सम्पूर्ण पाठ करना

० अभिषेक पर ये छः नियम हैं और इन सबका सम्बन्ध सर्वास्ति-मादितकाम से है, मर्यादा १२७६, १२७७, १२८१, १२८२ १२९६ और १११७.

इन भ्रम में पड़े हुए वे पाप पर पाप करते चले जाते हैं। ये लोग सबसे नीच घेरी के हैं।

[३३]

मृत्यु के पदचान् कार्यों का प्रपन्थ

मृतमित्र के कार्यों के प्रपन्थ की रीति का विनय में पूर्ण रूप से वर्णन है। मैं यहाँ संक्षेप से बहुत आवश्यक बातें देता हूँ। सबसे पहले इस बात का पता लेना चाहिए कि कोई श्रम तो नहीं; मृत व्यक्ति कोई मृत पक्ष तो नहीं छोड़ गया और समावस्था में कौन उसकी सेवा करता रहा है। यदि ऐसी अवस्था हो तो सम्पत्ति का बंटवारा राजनिधम के अनुसार होना चाहिए। जो सम्पत्ति बच जाय उसे उचित रूप से बाँट देना चाहिए।

उद्यान (विशेष का एक भाग) का एक श्लोक है—

‘भूमि, घर, दूकानें, मिछीने की सामग्री,
साँदा, लोहा, धनड़ा, उस्तरे, बर्तन,
कपड़े, छड़ियाँ, पशु, पेय पदार्थ, भोजन,
औषधि, पत्तंग, तीन प्रकार की—
बहुमूल्य वस्तुएँ, मोना, चाँदी, इत्यादि,
विशिष्ट वस्तुएँ—जनी हुई या बिना बनी हुई;
इनको, इनके गुणों के अनुसार, विभाज्य
अथवा अविभाज्य ठहराना चाहिए।
जगति-मूल्य वस्तु ने वह विधान किया था।’

इनका विशेष वर्णन इस प्रकार है—भूमि, घर, दूकानें, बिछाने की सामग्री, जनी आसन और लोहे या ताँबे के उपकरण बाँटे नहीं जा सकते। परन्तु शेषोक्त में से बड़े और छोटे लोहे के बटोरे, ताँबे के छोटे बटोरे, बरपावों की चाँभियाँ, सूइयाँ, बरमे उस्तरे चाकू, लोहे की छोइयाँ, काँसे की चाँभें, कुल्हाड़े, छेनियाँ इत्यादि और साथ ही उनकी घँसियाँ; मिट्टी

सम्प्रदाय = वे लोगों के पाट के लिए एक पुस्तकालय में रखा देना चाहिए। जो पुस्तकें धीरे-धर्म वी न हो उन्हें बेच टांगा जाय, और (उनमें प्राण हुआ धन) उन समान नियाम करनेवाले भिक्षुओं में बांट दिया जाय। यदि लेखपत्र और ठेके तत्काल बेच हों तो (रपया) बसूल करके पटपट बांट देना चाहिए; यदि वे तत्काल बेच न हों तो लेखपत्र कोष में रखा छोड़ने चाहिए, और जब उनकी अवधि पूरी हो जाय, तब (रपया) सत्तु के उपयोग के सर्पण कर दिया जाय। सोना, चांदी, गड़ा हुआ तथा बिना गड़ा हुआ माल, कौटिली (कपड़े) और मुद्राएँ, धुनु, धर्म तथा सत्तु के लिए, तीन भागों में बांट दी जाती हैं। धुनु का भाग मन्त्रियों, उन स्त्रियों—जिनमें पवित्र बाल या नाखून रखे हुए हैं—और अन्य लैहहरी के जीर्णोद्धार में व्यय किया जाता है।

धर्म का भाग धर्म-गुस्तरों की मजदूर करने और 'सिंहासन' के निर्माण तथा मजदूर में लगाया जाता है। दूसरा सत्तु का भाग मठ में रहनेवाले भिक्षुओं में बांट दिया जाता है।

भिक्षु के छः परिष्कारों रोगी यात्री को दिये जाते हैं। बाक़ी की दूटी हुई चीज़ें उचित रूप से बांट दी जायें।

इस विषय का सम्पूर्ण वर्णन बड़ी विनय में मिलता है।

[३४]

सह की साधारण सम्पत्ति का उपयोग

सभी भारतीय विहारों में भिक्षु को बपड़े मठ में रहनेवाले भिक्षुओं (के सामने की पूंजी) से दिये जाते हैं। खेतों और उद्यानों की उपज

* तुलना कीजिए बसुदिससप ।

करता है* । मोक्ष-मार्ग पर मनुष्य का सदैव जितना अधिक दृढ़तापूर्वक स्थिर होता है उतना ही उतना आन्तरिक ध्यान और ज्ञान बढ़ता है । बाहर से प्रेम और दया दिखाने से मनुष्य का मन मुक्ति-घाट की ओर जाता है । जो जीवन इस रीति से समाप्त होता है वह मर्याद है । भिक्षुओं के घोर विहार से रहनेवाले भिक्षुओं की मारि की सम्पत्ति में से दिये जाने चाहिए, और प्रत्येक वस्तु—जैसे कि बिछौने के बपड़े, इत्यादि—समान रूप से बाँटी जानी चाहिए और किसी एक ही व्यक्ति को नहीं दी जानी चाहिए; इस प्रकार उन्हें विहार की सम्पत्ति की रक्षा अपनी निज की सम्पत्ति से भी अधिक सावधानी से करने चाहिए । यदि अनेक दान हों तो विहार की चाहिए कि बड़े को पुण्यार्थ दे के छोटे को रख लें । यह बुद्ध की ध्येय शिक्षा के अनुकूल है, क्योंकि उसने स्पष्ट कहा है—‘यदि तुम वस्तुओं का मर्यादित रीति से उपयोग करोगे तो तुममें कोई दोष न मिलेगा । तुम मर्याद रूप में अपना निर्वाह कर सोगे और धर्म-पूर्वक आजीविका की तलाश करने के बट तपा व्यय से मुक्त हो जाओगे’ ।

विहार के लिए बहुत-सा धन, सड़े हुए अनाज से भरे हुए साते, अनेक दास और दासियाँ, शोषागार में दकड़ठा किया हुआ रुपया और खजाना रखना, और इनमें से किसी भी चीज का उपयोग न करना, जब कि सारे सदस्य नियंत्रण से दुःख पा रहे हों, अनुचित है । बुद्धिमानों को सदा सत्वात्म्य का ठीक निरूपण करके उसके अनुसार आचरण करना चाहिए ।

कुछ विहार ऐसे हैं जो वहाँ रहनेवालों को भोजन नहीं देते, किन्तु, प्रत्येक वस्तु उनमें बाँट देते हैं और उन्हें अपने भोजन के लिए स्वयं उपाय करना पड़ता है । ऐसे विहार किसी परबेसी को वहाँ निवास करने

* पुराने बौद्धों का ऐसा जीवन अभी इ-तिहास के समय में भी मौजूद था ।

